विश्वशांति और अहिंसा : एक विश्लेषण
(जैन धर्म के विशेष संदर्भ में)

***डॉ0 हरिकान्त मिश्र**

मानव स्वभाव से शांतिप्रिय है। मानव अपने विकास के आदिकाल में अकेला था, वैयक्तिक सुख–दुःख की सीमा से घिरा हुआ, एक जंगली जानवर की भाँति। उसमें मानव चेतना का विकास नहीं हुआ था। लेकिन एक दिन वह भी आया जब उसमें चेतना का विकास हुआ और दूसरों के विषय में भी सोचना प्रारम्भ किया। साथ ही उसमें स्वार्थ और परार्थ की भावना भी विकसित हुई। स्वार्थ ने अशांति को जन्म दिया तो परार्थ ने शान्ति को। आज स्वार्थ पराकाष्ठा पर है, फलतः समाज व राष्ट्र में अशांति व्याप्त है। आज व्यक्ति के समक्ष मात्र भोजन और वस्त्र की ही समस्या नहीं है, बल्कि भौतिक आवश्यकताएँ इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि उनकी पूर्ति व्यक्ति अहर्निश व्यस्त रहकर भी नहीं कर पा रहा है। असन्तोष और अधिकार लिप्सा न केवल वैयक्तिक, बल्कि सामाजिक व राष्ट्रीय स्तर पर भी देखी जा रही है। संघर्ष और अशांति का ताण्डव आज वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर विद्यमान है। धर्म के नाम पर साम्प्रदायिकता साहस के नाम पर झगड़ालु प्रवृत्ति, प्रामाणिकता के नाम पर आडम्बर, सत्य के नाम पर कूटनीति, सामाजिकता के नाम पर वर्गवादिता आज चारों ओर दृष्टिगोचर होती हैं। जहाँ तक अशांति की बात है तो आर्थिक अशांति के मूल में धन की असमानता है, तो राजनैतिक अशांति के मूल में आर्थिक अशांति और औपनिवेशिक समस्याएँ हैं। इसी प्रकार धार्मिक अशांति के मूल में प्रतीकों का बोलबाला है। इनके अतिरिक्त और भी अशांति के कारण हैं, जैसे– व्यक्तिवाद और समाजवाद का संघर्ष, शोषित का वर्गभेद, असंतोष की भावना, अनैतिकता, इच्छाओं की अत्यधिक व अनुचित वृद्धि आदि।

भारतीय संस्कृति वसुधैवकुटुम्बकम् की संस्कृति है। कहा भी गया है–

अंय निजः परोवेति गणना लघु– चेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैवकुटुम्बकम्।।

वसुधैवकुटुम्बकम् के इस कलेवर को व्यक्ति ने जैसे ही उतारा कि अशांति की जागृति हुई, स्वार्थ ने पाँव फैलाया और वही मानव की नियति बन गई। भारतीय संस्कृति में जहाँ दया और करुणा का, पवित्र मानवता का इतना उच्च विकास हुआ है, वहीं मानव आज स्वार्थों और इच्छाओं का दास बना हुआ है। अपने स्वार्थ के लिए दूसरों के प्राणों से खेल रहा है। जब तक वासना और विकार के बन्धन व स्वार्थ की बेड़ियों नहीं टूटेंगी तब तक शांति की बात करना कोई माने नहीं रखता है। क्योंकि व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र से विश्व बनता है। इस प्रकार सबके मूल में व्यक्ति ही है, अतः व्यक्ति में जब शांति का वास होगा तभी स्वभावतः विश्व में शांति– व्यवस्था बनेगी।

****सह आचार्य, दर्शनशास्त्र विभाग, ज0रा0दि0राज्य विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ0प्र0)**

विश्वशांति और अहिंसा : एक विश्लेषण
(जैन धर्म के विशेष संदर्भ में)

आज विश्व जितना व्याकुल विश्वशांति के लिए है संभवतः उतना व्याकुल कभी नहीं था। पहले जीवन था, जिजीविषा थी, जीवन व्यवहार था, चारित्र था, समभाव था। आज विश्व विषमभाव में व्याप्त है, क्षणिक व्यामोह में फँसा हुआ है, ऐसी स्थिति में जब अहिंसा और शांति के घटक सत्पथ पर अग्रसर होंगे तब जाकर शांतिपूर्ण समाज की स्थापना हो सकती है।

अहिंसा का मार्ग ही है जिस पर चलकर मानवीय समस्या का शांतिपूर्ण हल ढूँढा जा सकता है। अहिंसा एक विधायक शक्ति है जिसके समक्ष बड़े से बड़ा हिंसात्मक व्यक्तित्व भी धराशायी हुआ है। अहिंसा, संयम और शांति के सम्बन्ध में आचार्य तुलसी ने कहा है– विश्वशांति और व्यक्ति की शांति दो वस्तुएँ नहीं हैं। अशांति मा मूल कारण अनियंत्रित लालसा है। लालसा से, संग्रह से शोषण की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। व्यक्ति या विश्व जो भी शांति चाहता है उसे इन मूल कारणों से बचना होगा..... शांति के लिए ऐसे अहिंसा समाज का निर्माण अपेक्षित है, जिसमें जीवन का प्रवाह चलता रहे और आक्रमण का शोषण न हो। संकल्पपूर्वक होने वाली हिंसा मिट जाए। अहिंसा अभय है, इसलिए कायरता और कमजोरी से इसका कोई अभिप्राय नहीं। अहिंसा और कायरता का 36 का सम्बन्ध है।[1]

वस्तुतः आज शांति के जितने भी प्रयत्न किये जा रहे हैं वे स्वार्थ की चादर ओढ़कर किये जा रहे हैं यही कारण है कि अब तक शांति के जितने भी प्रयास हुए हैं वे निरर्थक ही सिद्ध हुए हैं आज अशांति अभाव जनित है और वह अभाव है प्रेम का। प्रेम के अभाव में ही एक प्राणी दूसरे प्राणी की हिंसा करता है। प्रेम के इस अभाव की पूर्ति हिंसा– प्रतिहिंसा की भावना, अर्थलोलुपता, अधिकार की लिप्सा से नहीं की जा सकती है। नैतिकता से अनैतिकता, अहिंसा से हिंसा, प्रेम से घृणा, क्षमा से क्रोध व उत्सर्ग से संघर्ष एवं मानवता से पशुता पर विजय प्राप्त की जा सकती है। प्रश्न उठता है कि व्यक्ति हिंसा किसका करता है? स्व की या पर की? सामान्यतः यह माना जाता है कि हिंसा जब भी होती है दूसरे की ही होती है। लेकिन जैन धर्म के अनुसार जब भी हिंसा होती है तब दोनों अर्थात् स्व और पर की होती है। हिंसा में क्रोध, मान, द्वेष आदि की भावना निहित होती है, जिससे व्यक्ति स्व की हिंसा करता है। वस्तुतः जिसे व्यक्ति मारना चाहता है वह कोई दूसरा नहीं बल्कि वह स्वयं ही है, क्योंकि सभी जीव समान हैं। भगवान् महावीर ने कहा है– **'एगे आया'** अर्थात् आत्मा एक है, एक रूप है, एक समान है। चैतन्य के जाति, कुल, समाज, राष्ट्र स्त्री पुरुष आदि के रूप में जितने भी भेद हैं, वे सब आरोपित भेद हैं, बाह्म निमित्तों द्वारा परिकल्पित किये गये मिथ्या भेद हैं। आत्माओं के अपने मूल स्वरूप में कोई भेद नहीं है।[2] बैर हो, घृणा हो, दमन हो, उत्पीड़न हो सब अंततः लौटकर कर्ता के ही पास ही आते

विश्वशांति और अहिंसा : एक विश्लेषण
(जैन धर्म के विशेष संदर्भ में)

है, क्योंकि कृतकर्म निष्फल नहीं होते। यह ठीक उसी तरह होता है जिस तरह कुएँ में की गई ध्वनि प्रतिध्वनि के रूप में वापस होती है।

हिंसा से कभी भी शांति या समता की स्थापना नहीं हो सकती। क्या घृणा से घृणा का अन्त हो सकता है? बेशक नहीं। हम सभी जानते हैं कि युद्धोत्तर काल में विश्व के जिन देशों में साम्यवाद की स्थापना हुई, उन देशों में पहले खून की होली खेली गई। पूँजीपतियों के नाम पर एक बहुत बड़े वर्ग का सफाया किया गया। उन्मूलन की यह प्रक्रिया आज भी चल रही, लकिन यह विश्वबन्धुत्व का मार्ग नहीं है और न ही इसके द्वारा विश्वशांति स्थापना की कल्पना की जा सकती है। क्योंकि विश्वशांति तभी संभव हो सकती जब मानवीय चर्या में भौतिकता के साथ आध्यात्मिकता का भी समावेश हो। युद्ध आज भी होते हैं, पर उनमें निरपराध और युद्ध से विरत प्राणियों का भेदभाव नहीं होता। प्रत्येक युद्ध के बाद यह उम्मीद की जाती है कि भविष्य में युद्ध नहीं होगा, लेकिन सत्यता यह है प्रत्येक युद्ध समाप्ति के साथ भावी युद्ध का बीजारोपण हो जाता है। कारण कि मानव में प्रतिशोध की भावना का जन्म हो जाता है। इसके लिए आवश्यकता है मनुष्य के हृदय– परिवर्तन की। इस सम्बन्ध मे 19 दिसम्बर, 1949 को अमेरिका के राष्ट्रपति जनरल आइजनहावर द्वारा भारतीय संसद में दिये गये वक्तव्य को देखा जा सकता है। उन्होंने कहा– 'मैने एक भी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखा जो युद्ध चाहता हो। एसी एक भी माता नहीं होगी जो अपने पुत्र को युद्ध में भेजना चाहे। सभी विश्वशांति चाहते हैं। इसके लिए निःशस्त्रीकरण आवश्यक है। किन्तु निःशस्त्रीकरण से क्या युद्ध नहीं होगा? वस्तुतः युद्ध शस्त्रों द्वारा नहीं होता। युद्ध मनुष्य करते हैं और मनुष्य लोभ से प्रभावित होते हैं। अतः युद्ध के सम्बन्ध में जब तक युद्ध की प्रवृति न बदले तब तक शांति का स्थायी समाधान नहीं निकल सकेगा। स्पष्ट है आज सम्पूर्ण विश्व में राजनीतिज्ञ अहिंसक समाज के लिए सचेष्ट हैं। वे विश्व शांति का मार्ग ढूढ़ रहे हैं। उन्हें यह मार्ग कौन बताएगा? इसका उत्तर है– भारत के सन्त और महापुरुष, जिन्होंने अहिंसा और विश्वशांति के लिए विभिन्न पक्षों का अध्ययन, मनन किया है, वे ही विश्व को शांति का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।'[3]

भगवान् महावीर ने कहा है– **मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणई।** अर्थात् विश्व के सभी प्राणियों से मेरी मैत्री है, मेरा किसी से भी बैर नहीं है। वस्तुतः जिसे तू मारना चाहता है वह तू ही है, जिसे तू शासित करना चाहता है वह तू ही है, जिसे तू परिताप देना चाहता है वह तू ही है। अतः सब प्राणी, सब भूत, सब जीव और सब सत्वों को न मारना चाहिए, न अन्य व्यक्ति के द्वारा मरवाना चाहिए, न बलात् पकड़ना चाहिए, न परिताप देना चाहिए और उन पर प्राणापहार उपद्रव ही करना चाहिए।[4] जीव के प्रति अन्याय की जितनी भी प्रवृत्तियां हैं सभी हिंसा के अन्तर्गत आती हैं। आज समाज में बढ़ती हिंसा की प्रवृत्तियां चाहे सामाजिक क्षेत्र में हो या धार्मिक क्षेत्र में या फिर आर्थिक क्षेत्र में

विश्वशांति और अहिंसा : एक विश्लेषण
(जैन धर्म के विशेष संदर्भ में)

सब के पीछे हिंसा तो जीव की ही होती है। आचार्य तुलसी ने कहा है कि युद्ध चाहे जैसा भी हो वह हिंसा का परिणाम है, उसे अहिंसा की संज्ञा नहीं दी जा सकती। यद्यपि युद्ध अहिंसा नहीं है तथापि उसमें अहिंसा के लिए पर्याप्त स्थान है। जैसे आक्रांता न बनें, निरपराध को न मारें, कम से कम नागरिकों को तो न मारें, अपाहिजों के प्रति क्रूर व्यवहार न करें। इसी प्रकार क्रय– विक्रय, प्यापार और आदान– प्रदान समाज के लिए आवश्यक है। यह अहिंसामय है– ऐसा नहीं कहा जा सकता। किन्तु इसमें अन्याय और शोषण न हो, कम तोल– माप न हो,मिलावट न करे, विश्वसघात न करें, झूठा दस्तावेज न बनाए– ऐसा तो संभव है ही। यही व्यापार के क्षेत्र में अहिंसा है।[5] जैन धर्म आचार, विचार और अर्थ जो मानव जीवन के तीन महत्वपूर्ण पक्ष हैं, मैं अहिंसा की बात करता है।

जैन धर्म समाज– व्यवस्था विश्वप्रेम की नींव पर ही अवलम्बित है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत केवल मनुष्य के बीच भाईचारे का सम्बन्ध ही निहित नहीं है बल्कि संसार के पशु– पक्षी, कीड़े– मकोड़े आदि समस्त प्राणियों के साथ भ्रातृत्व भाव समाहित है। तभी तो कहा गया है–

सत्वेषु मैत्री गुणीषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वमं।
मध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधाततु देव।।[6]

प्राणियों के प्रति ही एक ऐसा सिद्धान्त है जो व्यक्ति और समाज के अधिकार और कर्तव्य की श्रृंखला स्थापित कर सकता है। आज व्यक्ति और समाज के बीच की खाईं संघर्ष और शोषण के कारण गहरी हो गई है जिसे प्रेमाचरण द्वारा ही भरा जा सकता है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि मानव का जीना उसका अधिकार है लेकिन दूसरे को जीने देना उसका कर्तव्य है। जिस दिन ये बात लोगों को समझ में आ जायेंगी समाज में शांति होगी।

मतवैभिन्न्यता भी समाज में अशांति का कारण है। महावीर ने कहा है कि अपनी बात या धारणा के प्रति दुराग्रह होना एकांतवाद है। यहीं कारण है कि हठवादिता और एकान्त दृष्टिकोण हमारे लिए अशांति और संघर्ष उत्पन्न करते हैं। इस समस्या के सताधन हेतु महावीर ने अनेकान्तवाद को प्रस्तुत किया। कहा कि किसी वस्तु को एकान्ततः 'ऐसा ही है' के स्थान पर 'ऐसा भी है' का प्रयोग करना चाहए। क्योंकि 'ही' आग्रह का द्योतक है तो 'भी' से वक्त की अपूक्षादृष्टि का पता चलता है।

वर्तमान अर्थप्रधान संस्कृति जो अशांति का सबल कारण है उसे अर्थसंयम द्वारा दूर किया जा सकता है। आज व्यक्ति के पास जितनी सम्पत्ति बढ़ती जा रही है उसमें उतनी ही मात्रा में असंतोष की भावना भी बढ़ रही है। असंतोष की यह भावना ही मानव को हिंसा की ओर प्रवृत्त करती है। क्योंकि संचयवृत्ति में मानव को न्याय–अन्याय का विचार नहीं

रहता है। आर्थिक समानता में जैन धर्म का अपरिग्रह सिद्धान्त अहम् भूमिका निभा सकता है।

अहिंसा के बिना विश्वशांति असंभव है। आज के मर्यादाहीन एवं उच्छृंखल जीवन में समरसता एवं शांति लाने के लिए अहिंसा ही वह आधार है जिस पर परमानंद का प्रासाद खड़ा किया जा सकता है। एकमात्र अहिंसा ही है जो मानव हृदय और शरीर के मध्य, बाह्म प्रकृतिचक्र और अन्तरात्मा के मध्य, स्वयं और पड़ोसी के मध्य सदभावपूर्ण सामंजस्य पैदा करके बन्धुता का रस बहा सकता है तथा समग्र चैतन्य के साथ बिना किसी भेदभाव के तादात्म्य स्थापित कर सकता है। लेकिन अहिंसा का यह प्रारूप तभी संभव है जब अहिंसा के साधनों के औचित्य को हम ध्यान में रखेंगे। जैल धर्म में प्रत्येक कार्य को संचालित करने के लिए सर्वप्रथम श्रद्धा और विश्व पर बल दिया गया है। रत्नत्रय के रूप में जैन धर्म ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को इस रूप में प्रस्तुत किया है कि व्यक्ति इनके द्वारा अपने वैयक्तिक जीवन को सुधार कर समाज और राष्ट्र की ऐसी इकाई बन सकता है जिससे आदर्श समाज और राष्ट्र का निर्माण होगा।

अहिंसा जिसे कायरों का शस्त्र कहा जाता है, वस्तुतः वह एक ऐसी विधायक शक्ति है कि जिस कार्य को लाख परमाणुबम और हाइडोजन बमों के प्रयोग से सम्पन्न नहीं किया जा सकता है उस कार्य को अहिसा द्वारा सहज ही सम्पन्न किया जा सकता है, जैसे महात्मा गाँधी ने भारतवर्ष की आजादी में अहिंसा की शक्ति से लोगों को अवगत कराया था। आज आवश्यकता है अहिंसा को व्यावहारिकता के धरातल पर लाने की किन्तु इसके लिए हमें दृढ़संकल्प होना होगा तभी विश्वशांति की स्थापना हो सकेगी।

सन्दर्भः

1. मिश्र, अनन्त **विश्वशान्ति और अणुव्रत,** प्रका0– आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0– 21
2. **चिन्तन की मनोभूमि,** सम्पादक डॉ0 बशिष्ठ नारायण सिन्हा, सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, पृ0– 251
3. मिश्र, अनन्त, **विश्वशान्ति और अणुव्रत,** पृका0– आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0– 22
4. सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता, न हंतव्वा, न अज्जावेयव्वा, न परिघित्तव्वा, न उद्दवेयव्वा, एस धम्मे सुद्धे नियये सासये। आचारांगसूत्र, 1/4/1
5. मिश्र, अनन्त, **विश्वशान्ति और अणुव्रत,** प्रका0– आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0– 21
6. सामायिक पाठ, 1